• कविताएं...

सूरज...

हर सुबह एक सूर्य प्राची आंगन में
और एक-मेरे मन मंदिर भीतर
प्रकाशित कर अग-जग को
डूब जाता है पश्चिम छोर पर
यह सांध्य सूरज।
कहीं दूर फैला विस्तृत अपार जल
जैसे पिघल गया लावा हो,
बिखर गई हो ऊर्जा।
उमड़ उठते हों अमृत घन
आप्लावित जल-थल
जीती है सृष्टि
पीती हुई रस
इस जीवन का,
सृष्टि इसी से तू आत्मसात करती है
होता है सृजन सृष्टि का।
मन मंदिर का सूर्य
देव सम्मुख-बन जाता है दीपक
आलोकित जिससे
अंतर-तन-मन
करता रहता सृजन
चेतन आत्म तत्व
गढ़ता रूप नित्य नूतन।
मेरा मन मंदिर-
ईश पूजन स्थल
जलता ऊर्ध्व दिशा
बन आत्म दीपक।

-इंदिरा शर्मा

धूप ...

एन दोपहर के बाद की धूप
बहुत अकेली
अनमनी सी
चलती है अभ्यस्त पांवों से
धीरे-धीरे
न खिलखिलाते हैं बच्चे
इसका मन बहलाने
न ही उमगे हैं फूल
सारा बगीचा ही सिर झुकाये खड़ा है
धूप रखती है
अपना थका सिर ढलानों पर
कभी रखती है अपने कांधों पर
बादल की शॉल
कभी उदार होती
कभी होती है तेज
अब पल-पल बदल रहा है
धूप का मन
रगों में घुले अवसाद को
बदल रही है आश्वस्ति में
अपनी सींची हुई ऊर्जा से
सुकूं की ठंडक भी लिए
आ रही है सांझ।

-अनिता मंडा

• लघुकथा/–धर्मवीर भारती

तारा और किरण...

आगतांक से आगे...

गंतुक-प्रेम क्या? बड़ा गूढ़ प्रश्न है रानी! इसका उत्तर देना असंभव है। तब क्या मेरी जिज्ञासा अतृप्त ही रहेगी? रानी ने पूछा। अच्छा रानी, क्या तुमने भी किसी उदासी भरी वेला में अनुभव किया है अपने हृदय में गूंजता हुआ कोई दर्दीला स्वर- क्या तुम्हारे हृदय में कभी अनजाने अकारण ही कोई पीड़ा कसक उठी है?अतिथि! तुम्हारी रहस्यमयी बातें मैं नहीं समझ पा रही हूं। रानी ने कहा।

तुम समझ भी नहीं सकतीं रानी! हम मानवों में ही इस प्रेम की अभिलाषा का अनुभव करने के लिए हृदय होता है, रानी- यह प्रेम अलौकिक होते हुए भी वास करता है हम नश्वर प्राणियों के हृदय में। तुम्हारे मायालोक से अपरिचित है। तो क्या मैं प्रेम से अपरिचित ही रहूंगी? मैं कितनी भाग्यहीन हूं। असीम जलराशि में रहकर भी मैं अतृप्त तृष्णा से जलती ही रहूंगी- मैं कितनी दुःखी हूं। अतिथि मेरा रानीत्व मेरे नारीत्व को चूर-चूर कर रहा है- यह असीम वैभव, अनंत यौवन क्या यों ही.. रानी का गला भर आया। रानी करुणा भरे स्वरों में बोली, तुम मुझे प्रेम न सिखलाओगे, अतिथि? मैं मानवी नहीं हूं पर न जाने क्यों यह शब्द मुझे कुछ विस्मृत युगों का स्मरण दिला रहा है। जैसे अव्यक्त शब्दों में मुझे सुना रहा हो प्रेम के उदास गीत, क्यों मेरे हृदय के रहस्यों से मुझे अपरिचित रखोगे, अतिथि और दो आंसू चू पड़े रानी के आंचल पर। अतिथि ने दुलार भरे शब्दों में बोला, मैं प्यार सिखाऊंगा, मेरी रानी! रानी के उदासी के बादल फट गए। रानी के चंचल करों ने चुने कुछ जल-पटल और उन्हें बिखेर दिया भावमग्न अतिथि पर। अतिथि ने देखा-वरुण-लोक की रानी ने वे कोमल जल-पटल उठाए और मस्तक से लगा लिए।

किंतु इनमें सौरभ तो है ही नहीं, रानी। पर इनमें अनंत यौवन तो है- क्या तुम्हारे लोक में फूलों में सौरभ भी होता है, अतिथि? विचित्र है तुम्हारा लोक- सौंदर्य तो रूप का गुण है-पर सौरभ तो नहीं- फिर तुम्हारे लोक में फूलों में भी सौरभ होता ह-हां! हमारे फूलों में सौरभ होता है, रानी! हमारे लोक में ऐसे ही अलौकिक गुण रहते हैं, रानी। रूपवान फूलों में सौरभ, लेकिन अतिथि! मत्स्यबालाओं से सुनती हूं कि इन्हें कभी-कभी तटों पर बहकर एकत्र हुए राशि-राशि फूल मिलते हैं जो निरंतर जल में रहने से गल जाते हैं। उनका रंग उड़ जाता है और उनसे निकलने लगती है कड़ी दुर्गंध। कभी-कभी श्मशान घाटों पर भस्म के ढेरों में दबी मिलती है फूल-मालाएं, जो जलकर शुष्क हो जाती हैं और जो हल्के स्पर्श से चूर-चूर होकर बिखर जाती हैं। कैसा दर्द भरा वर्णन है, अतिथि! क्या इन्हीं फूलों की भांति तुम्हारे देश का यौवन भी अस्थिर है? क्या वहां का प्रेम भी इतना नश्वर है-बोलो।

हां रानी! यौवन के आश्रित रहने वाला प्रेम भी इतना ही नश्वर है।-अतिथि!

अतिथि! प्रेम नश्वर है, यौवन अस्थिर है। आहा! मेरे हृदय में जैसे ज्वालामुखी तप रहा है। अतिथि। प्रेम नश्वर है। रानी अपने शयन–कक्ष की ओर भागी। शय्या पर अधलेटी रानी सिसक रही थी।

अतिथि ने रानी के आंसू थमे और वह बोली– अतिथि! मैं युगों–युगों से प्रेम की प्रतीक्षा में जीवित थी। मैं अपने अनंत यौवन का साफल्य प्रेम में पाना चाहती थी। तुमने प्रेम की नश्वरता का चित्र खींचकर मेरी गति का आधार मुझसे छीन लिया...

रानी चीखी। प्रेम नश्वर है, यौवन अस्थिर है। नहीं! ऐसा मत कहो। किंतु-रानी!

किंतु-परंतु नहीं, अतिथि! प्रेम नश्वर है, यौवन अस्थिर है। आहा! मेरे हृदय में जैसे ज्वालामुखी तप रहा है। अतिथि। प्रेम नश्वर है। रानी अपने शयन-कक्ष की ओर भागी। शय्या पर अधलेटी रानी सिसक रही थी।

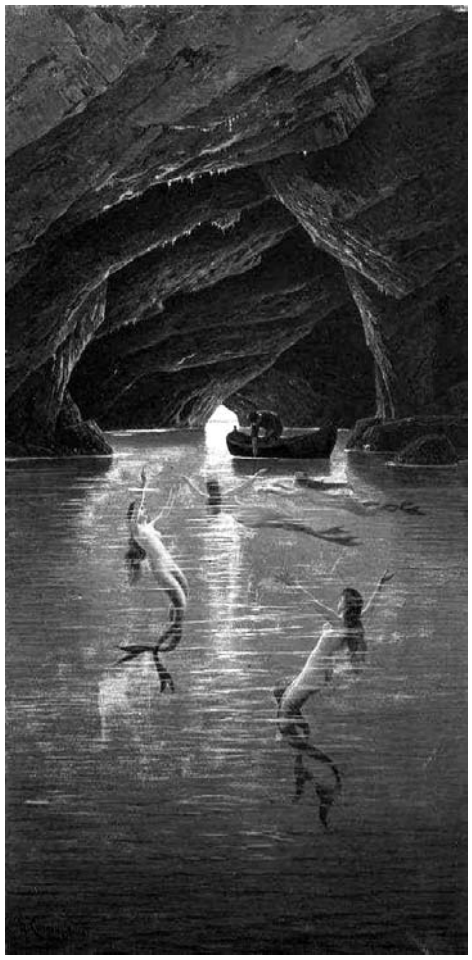

अतिथि ने रानी के आंसू थमे और वह बोली-अतिथि! मैं युगों-युगों से प्रेम की प्रतीक्षा में जीवित थी। मैं अपने अनंत यौवन का साफल्य प्रेम में पाना चाहती थी। तुमने प्रेम की नश्वरता का चित्र खींचकर मेरी गति का आधार मुझसे छीन लिया। अतिथि! तुमने मेरे अंतिम प्रदीप को एक निर्मम झोंके से बुझा दिया है और मुझे छोड़ दिया है घोर तिमिर में भटकने के लिए एकाकी- यह किस जन्म के कृत्य का बदला तुम मुझसे ले रहे हो आगंतुक? बोलो- पथिक आश्चर्यचकित था। उसने कांपते करों से थाम ली रानी की मृणाल भुजाएं। रानी उठ बैठी-यह क्या किया अतिथि? उसने पथिक की ओर देखा, यह तुम्हारा प्रथम स्पर्श जैसे मुझे भस्म कर रहा है- तुम्हारे नश्वर मृत्युलोक की प्रेम की छाया मेरे अनंत यौवन पर भी पड़ गई- आह! मेरे हिम से अंग गल रहे हैं इसमें-अतिथि-अतिथि रुंधे गले से बोला-रानी! हम मनुष्यों का प्रेम मनुष्य ही समझ सकते हैं- यौवन का आश्रित प्रेम नश्वर होता है-पर प्रेम का आश्रित प्रेम अमर-हम नश्वर जानते हुए भी पलकें मूंदकर प्रेम करते हैं- क्योंकि हमारा प्रेम आत्मदाह होता है-याचना नहीं। तुमने प्रेम को यौवन की तुला पर तौलना चाहा, रानी! और प्रेम के भीषण ताप में गल रही हो। तुम अनंत शून्य में झांककर देखना, रानी! मैं प्रेम की जलन में जलकर भी तुमसे प्रेम करूंगा। इस कथन के पूर्व ही रानी का हिम-तन गल चुका था। प्रातःवेला में सूर्य की दो किरणें किसी विशाल भुजाओं की भांति आगे बढ़ती हैं उसे आलिंगन में भरने के लिए, पर उनके समीप आने के पहले ही वह अरुणिमा में मुंह छिपाकर लौट जाता है अपने निराशा के देश को। मत्स्यबालाएं आती हैं। उन स्वर्ण किरणों को बीनकर ले जाती हैं वरुण-लोक। उनका कहना है कि यह है उनकी अदृश्य रानी का प्रेम जो तारे के रूप में चमकते अतिथि के पास जाता है पर उसके ताप से निस्तेज होकर बिखर जाता है पृथ्वी पर और वे उसे बीन लाती हैं अपनी रानी की स्मृति में। वरुण लोक में अब प्रेम करना मना है।

-समाप्त

• शायरी...

खुश्बू की तरह साथ लगा ले गई हमको
कूचे से तेरे बादे-सबा ले गई हमको
पत्थर थे कि गौहर थे अब इस बात का क्या ज़िक्र
इक मौज बहरहाल बहा ले गई हमको

◆◆◆

फिर छोड़ दिया रेगे-सरे-राह समझ कर
कुछ दूर तो मौसम की हवा ले गई हमको
तुम कैसे गिरे आंधी में छतनार दरख्तो!
हम लोग तो पत्ते थे उड़ा ले गई हमको
हम कौन शनावर थे कि यूं पार उतरते
सूखे हुए होंटों की दुआ ले गई हमको
इस शहर में ग़ारत-गरे-ईमां तो बहुत थे
कुछ घर की शराफ़त ही बचा ले गई हमको

-इरफ़ान सिद्दीकी

◆◆◆

उसकी आंखों में थी गहराई बहुत
क्यूं सताती है ये तन्हाई बहुत
हिज्र की सौग़ात क्या लाई बहुत
बे-तहाशा याद भी आई बहुत

-साहिल अहमद

• कांटे अगर मिलें तो...

फिर क्या जो फूट–फूट के ख़ल्वत में रोइए
यकसर जहान ही को न जब तक डुबोइए
दीवाना–वार नाचिये हंसिए गुलों के साथ
कांटे अगर मिलें तो जिगर में चुभोइए
आंसू जहां भी जिस की भी आंखों में देखिए
मोती समझ के रिश्ता–ए–जां में पिरोइए
हर सुब्ह इक ज़जीरा–ए–नौ की तलाश में
साहिल से दूर शोरिश–ए–तूफ़ां के होइए
–उर्फी आफ़ाक़ी